हबीब तनवीर और छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य नाचा

जय प्रकाश

हबीब तनवीर के रंगकर्म और उनके रंगशिल्प के गठन में छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य 'नाचा' की उपस्थिति या उसका प्रभाव असंदिग्ध और प्रत्यक्ष है। उनका बचपन कस्बाई रायपुर के लोक-संस्कारों के बीच और छत्तीसगढ़ी नाचा के उभार के दौर में बीता था, मगर उच्च शिक्षा के लिए रायपुर से बाहर जाने पर जिस आधुनिकता से उनका सामना हुआ उसने उनकी कलाचेतना और समाजदृष्टि को गढ़ने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। यह संयोग था कि रंगकर्म की लोकपद्धति को उन्होंने देश-विदेश के अनुभव और प्रशिक्षण से अर्जित आधुनिक कला-दृष्टि के सहारे देखा, उसे आत्मसात किया और अपनी स्वतंत्र कला-दृष्टि विकसित की।

निस्संदेह यह संयोग था।

ब्रिटेन में रंगकर्म का प्रशिक्षण लेने और इस सिलसिले में पश्चिमी थियेटर का अध्ययन करते हुए यूरोप में यायावरी करने के बाद हबीब तनवीर भारत लौटे और दिल्ली में बेगम जैदी के थियेटर में काम करने लगे। 1958 की गर्मियों में वे अपने परिजनों से मिलने रायपुर आए। अंजुम कात्याल के साथ एक भेंटवार्त्ता के दौरान इसे याद करते हुए उन्होंने बताया- "मुझे पता चला कि जिस स्कूल में मेरी पढ़ाई हुई थी, उसके मैदान में रात 9:00 बजे नाचा होने वाला है। मैंने रात भर नाचा देखा। उन्होंने तीन या चार प्रहसन पेश किए। कलाकारों में एक मदनलाल थे, बेहतरीन एक्टर। दूसरे ठाकुर राम थे। वे भी गजब के कलाकार थे। बाबूदास भी आला दर्जे के एक्टर थे। भुलवाराम उत्कृष्ट गायक-अभिनेता थे। ये सभी कलाकार अच्छे गायक होने के साथ बहुत अच्छे कॉमेडियन भी थे। उन्होंने चपरासी नकल और साधु नकल पेश किया। मैं तो मंत्रमुग्ध था। कार्यक्रम ख़त्म होने के बाद मैं उनके पास गया और कहा 'मेरे साथ दिल्ली चलोगे नाटक में काम करने के लिए?' वे तैयार हो गए। मैंने भुलवाराम, बाबू दास, ठाकुर राम, मदनलाल और जगमोहन को शामिल कर लिया। जगमोहन मोहरी बजाते थे।" आगे हबीब तनवीर बताते हैं कि बाद में वे राजनांदगाँव गए, जहाँ उनकी मुलाक़ात लालूराम से हुई। उनके घर में रात-भर उनके गाने सुनते रहे और अपनी मंडली में लालूराम को भी शामिल कर लिया। इस तरह छह कलाकार हबीब तनवीर के साथ दिल्ली गए और बेगम ज़ैदी के हिंदुस्तानी थिएटर, जिसके डायरेक्टर ख़ुद हबीब तनवीर थे, की प्रस्तुति में सम्मिलित हुए।

भारतीय रंगमंच के इतिहास की यह एक अभूतपूर्व घटना थी। यह पहला मौक़ा था जब अपढ़-गँवई कलाकार शहरी रंगमंच पर अपनी समूची ग्रामीणता के साथ अवतरित हो रहे थे ; वह भी एक क्लासिकल संस्कृत नाटक 'मृच्छकटिकम' के हिंदी रूपांतर 'मिटटी की गाड़ी' में। शास्त्रीयता और आधुनिकता के द्वैध में घिरे नागर रंगमंच के लिए 'मृच्छकटिकम' यूँ भी एक चुनौती था। ऊपर से लोक-कलाकारों का अनगढ़पन और उनके अभिनय की निचाट लोक-शैली, जो उच्चभ्रू शहरी दर्शकों को स्वभावतः सहज स्वीकार्य नहीं थी। संस्कृत-विद्वानों ने इसकी आलोचना की, कि एक 'नाट्यधर्मी' कृति को 'लोकधर्मी' पद्धति से खेला गया, जबकि इसे शास्त्रीय शैली में मंचित किया जाना चाहिए था। कुछ आलोचकों ने इसमें समरसता के अभाव या रसों के असंतुलन की शिकायत की।

मगर यूरोप से लौटने के बाद अपनी शैलीगत पहचान की तलाश में जद्दोजेहद करते हबीब तनवीर को यहीं से रंगकर्म का अपना निजी मुहावरा मिला। लोक-शैली को आलंकारिक युक्ति के तौर पर नहीं, बल्कि रंगमंच की बुनियादी ज़रूरत के रूप में विकसित करने वाले इस रंग-निर्देशक को बाद में अपनी इस लोकबद्ध आधुनिक रंगदृष्टि के लिए ही देश-विदेश में जाना गया और उनके नाट्यकर्म को अंततः भारतीय रंगमंच की विशिष्ट उपलब्धि के रूप में मान्यता प्राप्त हुई।

अगर सोचें तो रायपुर के लॉरी स्कूल (अब माधवराव सप्रे स्कूल) में उस रात हबीब तनवीर नाचा देखने न जाते, तब भी क्या उनका थिएटर वही होता, जिसके आधार पर आगे चलकर उनकी विशिष्ट पहचान बनी, या जिसके नाम से वे जाने जाते हैं? क्या यह सच नहीं कि हबीब तनवीर की रंग-शैली के निर्माण में दरअसल छत्तीसगढ़ के लोक-कलाकारों के स्वतःस्फूर्त नैसर्गिक अभिनय की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है? लालूराम, मदन निषाद, भुलवाराम, ठाकुर राम, गोविंदराम निर्मलकर या फिदाबाई के बिना क्या हबीब तनवीर के थियेटर की कल्पना की जा सकती है? ये सभी छत्तीसगढ़ी 'नाचा' के सिध्द कलाकार थे। उस रात हबीब तनवीर ने जिस नाचा-दल का प्रदर्शन देखा था, उसके प्रबंधक और संगठक दाऊ रामचंद्र देशमुख थे, जिन्होंने 'छत्तीसगढ़ी देहाती कला विकास मंडल' का गठन कर नाचा-कलाकारों को प्रोत्साहन और संरक्षण दिया था। कहा जाता है कि हबीब तनवीर 'छत्तीसगढ़ी देहाती कला विकास मंडल' के कलाकारों को तोड़ कर अपने साथ दिल्ली ले गए।

इन कलाकारों के दिल्ली जाने के बाद 'छत्तीसगढ़ी देहाती कला विकास मंडल' की रीढ़ ही टूट गयी और उसका समापन हो गया। छत्तीसगढ़ के प्रख्यात लोक-संगीतकार खुमानलाल साव बताते हैं कि इस संस्था की बमुश्किल दस प्रस्तुतियाँ हो पाई होंगी। दाऊ रामचंद्र देशमुख मृत्यु-पर्यन्त शिकायत करते रहे कि हबीब तनवीर उनके कलाकारों को बहका कर दिल्ली ले गए। इस बात का इतना अधिक प्रचार हुआ कि छत्तीसगढ़ के लोक-कलाकार हबीब तनवीर को देश-विदेश में छत्तीसगढ़ी कला-संस्कृति

का परचम लहराने वाले एक नायक के रूप में जानते तो हैं, लेकिन इसके बावजूद आज भी मानते यही हैं कि उन्होंने छत्तीसगढ़ के भोले-भाले कलाकारों को बहला फुसलाकर उनका शोषण किया। देश-विदेश में प्रतिष्ठित और छत्तीसगढ़ के माटीपुत्र इस रंग-मनीषी को छत्तीसगढ़ में ही कटु आलोचना और प्रवाद का सामना करना पड़ा था। खुद कुछ लोक कलाकारों ने बराबर शिकायत करते रहे दिल्ली जाने और देश विदेश में अपने हुनर का प्रदर्शन करने के बावजूद उनकी माली हालत में किसी भी तरह का सुधार नहीं हुआ। एक बार राजनांदगाँव में अपने नाटकों के प्रदर्शन के बाद हबीब तनवीर ने जब वृद्ध और अशक्त मदन निषाद को उनके गाँव गूँगेरी नवागांव से बुलाकर मंच पर सम्मानित किया तो सहज भाव से मदन निषाद ने निःशब्द भावुकता और कातर विनय के साथ थरथराते होठों में मौन रहकर सम्मान का जवाब दिया था। लेकिन बाद में इस सम्मान-प्रसंग को याद करते हुए उन्होंने उलाहना भी दिया कि बरसों काम करने के बाद आखिर क्या मिला? गेंदे की फूल माला पहनाकर साहब ने अपना कर्त्तव्य पूरा कर लिया। अंतिम समय में मदन निषाद को रवेली नाचा पार्टी और मंदराजी दाऊ को छोड़कर हबीब तनवीर के साथ दिल्ली जाने का किंचित अफसोस भी रहा।

मगर खुमान लाल साव एक दूसरी कहानी कहते हैं। वे बताते हैं कि स्वयं दाऊ रामचंद्र देशमुख ने मंदराजी दाऊ और लालूराम की अगुआई वाले रिंगनी-रवेली नाचा-पार्टी के कलाकारों को तोड़ कर 'छत्तीसगढ़ी देहाती कला विकास मंडल' का गठन कर लिया । जो आरोप दाऊजी हबीब तनवीर पर लगा रहे थे, वह स्वयं उन पर भी लागू होता है। हबीब तनवीर के साथ दिल्ली गए कलाकार पहले रिंगनी-रवेली नाचा-पार्टी से जुड़े थे। रिंगनी-रवेली नाचा-पार्टी दरअसल दो अलग-अलग नाचा-पार्टियों के परस्पर विलय से मिलकर बनी थी - रवेली पार्टी और रिंगनी पार्टी।

रवेली नाचा-पार्टी के मैनेजर दाऊ दुलार सिंह साव थे जो 'मंदराजी' के नाम से लोक-प्रसिद्ध थे। वे राजनांदगाँव के पास रवेली गांव के रहने वाले थे। रिंगनी-पार्टी के सर्वेसर्वा पंचराम देवदास थे। लालूराम, मदन निषाद और जगमोहन रवेली पार्टी के कलाकार थे। भुलवाराम, ठाकुर राम, बाबूदास रिंगनी-पार्टी के सदस्य थे। (बाद में हबीब तनवीर के साथ रवेली-पार्टी के गोविंदराम निर्मलकर, फिदाबाई, मालाबाई-जैसे कुशल कलाकार भी जुड़ गए।) खुमानलाल साव कहते हैं कि दाऊ रामचंद्र देशमुख ने रिंगनी-रवेली नाचा पार्टी के कलाकारों को तोड़ कर 'छत्तीसगढ़ी देहाती कला विकास मंडल' बनाया था। हबीब तनवीर ने उनके कलाकारों को दिल्ली ले जाकर और 'नया थियेटर' में उन्हें शामिल कर उनके साथ ठीक वही सलूक किया, जो दाऊ जी ने रिंगनी-रवेली नाचा-पार्टी और उसके संचालक मंदराजी दाऊ के साथ किया था।

इसमें संदेह नहीं कि दाऊ रामचंद्र देशमुख ने 'छत्तीसगढ़ी देहाती कला विकास मंडल' के ज़रिये प्रतिभा-सम्पन्न लोक-कलाकारों को एकत्र कर उनकी कला को परिमार्जित करने और शिष्ट रंगमंच के समकक्ष नाचा को स्थापित करने का प्रयत्न पूरी सदाशयता, निष्ठा और कलात्मक प्रतिबध्दता के साथ किया। अपनी संस्था का गठन भी उन्होंने इसी उद्देश्य से किया था। वे स्वयं कलाकार नहीं थे, मगर कला के प्रति उनमें असीम अनुराग था। सच कहा जाए तो वे विलक्षण प्रतिष्ठापक व्यक्तित्त्व थे। नाचा को प्रोत्साहित करने के लिए उन्होंने मालगुज़ारी की प्रतिष्ठा और अपने धन का भी उपयोग किया। सत्तर के दशक की शुरुआत में उन्होंने 'चंदैनी गोंदा' नामक लोक-सांस्कृतिक मंच की स्थापना कर नाचा के परिमार्जन का अपना मिशन दुबारा शुरू किया। वस्तुतः 'चंदैनी गोंदा' कृषिप्रधान छत्तीसगढ़ के माटीपुत्रों के शोषण की थीम पर आधारित एक ललित रंगसंयोजन था। अनजाने ही वह लोकनाट्य नाचा के ठेठ गँवई प्रभावों को तराश कर समकालीन रंग-शैली में उसके रूपांतरण का प्रयत्न बन गया। छत्तीसगढ़ के अलग-अलग इलाक़ों से आए बहुत-से कलाकार इससे जुड़े। आधुनिक रंग-प्रविधि के यत्किंचित प्रयोग और प्रस्तुति की भव्यता के कारण 'चंदैनी गोंदा' को खूब लोकप्रियता मिली। वह नृत्य, गीत-संगीत और नाट्य का भव्य संयोजन, एक आर्केस्ट्रेटेड उपक्रम था। लेकिन 'चंदैनी गोंदा' की वजह से कोई नाचा-पार्टी लड़खड़ाई नहीं, जबकि 'छत्तीसगढ़ी देहाती कला विकास मंडल' का गठन जब उन्होंने किया था, तब उसमें कलाकारों के शामिल होने से सिर्फ़ रिंगनी-रवेली नाचा-पार्टी ही नहीं, और भी कई नाचा-पार्टियाँ बिखर गईं। खुमानलाल साव इसके लिए दाऊ रामचंद्र देशमुख को दोष देते हैं। बाद में बतौर संगीत-निर्देशक वे स्वयं 'चंदैनी गोंदा' से या दाऊ रामचंद्र देशमुख से अभिन्न रूप से जुड़ गए । लेकिन कलाकारों को बहका कर दिल्ली ले जाने का आरोप लगाते हुए हबीब तनवीर को वे आज भी याद करते हैं।

खुमानलाल साव मगर इसके लिए लोक-कलाकारों को भी बराबर का दोषी ठहराते हैं। वे कहते हैं, 'कलाकारों ने लालचवश, पैसा कमाने और दिल्ली जाने के मोह में इतनी मज़बूत पार्टियों को क्यों तोड़ डाला, समझ में नहीं आता।' 1999 में इस बात की तसदीक मदन निषाद ने भी की थी। खुमानलाल साव के साथ एक बातचीत के दौरान यह पूछे जाने पर कि मंदराजी दाऊ को क्यों छोड़ा, उन्होंने कहा था-- 'मरते समय झूठ नहीं बोलूँगा गुरुजी। उस समय हम लोग लालच में आ गए थे। ' कहा जा सकता है कि पहले 'रिंगनी-रवेली नाचा-पार्टी' और बाद में 'छत्तीसगढ़ देहाती कला विकास मंडल' को छोड़ने के पीछे किसी हद तक कलाकारों का लोभ भी एक कारण था। लेकिन यह लोभ उन कलाकारों की आजीविका और नाम कमाने की कामना का स्वाभाविक प्रतिफल था। छत्तीसगढ़ी नाचा-कलाकार बेहद ग़रीबी और तंगहाली का जीवन जीते हुए अत्यंत कठिन परिस्थितियों में भी कला-साधना के अभ्यस्त थे। हबीब तनवीर के प्रस्ताव से उनके सामने एक नया आकाश खुल रहा था। उसमें पंख खोल कर उड़ान भरने से भला वे कैसे इनकार कर सकते थे?

मंदराजी दाऊ के नेतृत्व में पंचराम देवदास, नारदराम निर्मलकर आदि एक-से-बढ़कर एक प्रतिभाशाली कलाकारों के जुटने से जब एक मज़बूत नाचा-पार्टी उठकर खड़ी हुई, तो देखते-ही-देखते उसने अपार लोकप्रियता और प्रसिद्धि हासिल की। कालांतर में मंदराजी के साथ मदन निषाद, लालूराम, जगन्नाथ निर्मलकर, गोविंद राम निर्मलकर, देवीलाल नाग, फिदा बाई, माला बाई जैसे निष्णात कलाकार रवेली नाचा-पार्टी में शामिल हुए। इन सभी कलाकारों ने बाद में नया थियेटर में भी काम किया और राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त की।

मंदराजी दाऊ की नाचा-पार्टी के इन कलाकारों ने 'नया थियेटर' में काम करते हुए भारतीय रंगमंच में लोक-शैली के सर्जनात्मक विनियोग का बिल्कुल अनूठा अध्याय खोला। इन कलाकारों ने लोक और नागर के द्वैत को किसी हद तक मिटा दिया। एडिनबर्ग ड्रामा फेस्टिवल (1982) में 'चरणदास चोर' के लिए जो एडिनबर्ग फ्रिंज अवार्ड हबीब तनवीर को प्राप्त हुआ, उसका श्रेय उनके निर्देशकीय कौशल के साथ उस रंग-भाषा को भी जाता है, जिसे रचने में छत्तीसगढ़ी लोक-नाट्य 'नाचा' और उसके कलाकारों का बड़ा योगदान है। 'नाचा' की लोक-अभिव्यक्ति इस नई रंग-भाषा में किसी हद तक आधुनिक मुहावरे में ढल कर आती है और एक अनूठा प्रभाव पैदा करती है।

लोक-कलाकारों का अभिनय-कौशल असंदिग्ध है। वह कई मायनों में शहरी रंगमंच की रीति-नीति से इस रूप में भिन्न है कि मंच पर लोक-कलाकार अभिनय नहीं करते, बल्कि उस चरित्र की पूरी स्वाभाविकता के साथ जीते हैं। दिल्ली में 'बुर्जुआ जेंटलमैन' और 'बहादुर कलारिन' देख कर रघुवीर सहाय ने ठीक यही महसूस किया था - ' बुर्जुआ जेंटलमेन एक आधुनिक विदेशी नाटक था और बहादुर कलारिन एक निहायत देशी नाटक, जिसका न कहीं से अनुवाद किया गया था, न रूपांतर; मगर दोनों अपने कारणों से खरे और सच्चे थे। दोनों में कलाकारों का नाटक से अपनापा बराबर दिखता था। यह अपनापा सिर्फ़ नाटक से नहीं, बल्कि उस जीवन से था जो ये कलाकार जीते थे और इसीलिए हम सब लोग जीते या जी सकते थे।'

हबीब तनवीर जब इन नाचा-कलाकारों की सहायता से अपनी यह विशिष्ट रंगशैली विकसित करने का प्रयास कर रहे थे, तब संगठित नाचा-पार्टियों द्वारा नाचा-प्रदर्शन की परिपाटी शुरू हुए अधिक समय नहीं हुआ था। जिन मंदराजी दाऊ की नाचा-पार्टी के कलाकारों को हबीब तनवीर अपने साथ ले गए थे, वे ही छत्तीसगढ़ में संगठित नाचा-पार्टियों के जनक थे। इस अंचल में पहली बार एक नाचा-पार्टी का गठन 1928 में मंदराजी दाऊ ने किया। उनके गांव रवेली के नाम से यह पार्टी 'रवेली नाचा-पार्टी' कहलाई । 1928 के पूर्व छत्तीसगढ़ में कहीं भी संगठित नाचा-पार्टी नहीं थी। कलाकार यथावसर, कई बार अचानक संयोगवश, कहीं भी इकट्ठा होते और प्रदर्शन के बाद बिखर जाते।।

संगठित नाचा पार्टी बनाने के अलावा दाऊ मंदराजी ने एक और महत्वपूर्ण कार्य यह किया कि उन्होंने नाचा की खड़े-साज की परंपरा को पूरी तरह से समाप्त कर बैठक-साज की नई पद्धति की शुरुआत की। वादक कलाकार अब वाद्ययंत्रों को खड़े होकर नहीं, बैठ कर बजाते थे, नर्तक और अभिनेता मंच पर परफॉर्म करते थे। इस तरह नाचा का एक नया फॉर्म सामने आया। मगर यह परिवर्त्तन सिर्फ नाचा के फॉर्म या प्रस्तुति के परिवेश में दिखाई देने वाले बदलाव तक सीमित नहीं था। नाचा के विकास में मंदराजी का इससे अधिक महत्त्वपूर्ण योगदान यह है कि उन्होंने इस विधा को गहरी सामाजिक अर्थवत्ता और प्रासंगिकता दी। उसके नितांत धार्मिक और भक्तिपरक स्वरूप का परिमार्जन कर उसे ठोस लौकिक (सेक्युलर) और सामाजिक विषयों की और उन्मुख किया। रवेली नाचा-पार्टी ने समाज की समस्याओं और सामुदायिक जीवन की गहरी समझ के साथ चुने गए कथानकों पर गम्मत खेले। बाद में बनी अन्य नाचा-पार्टियों ने उनका अनुकरण किया।

खड़े-साज वाले नाचा के दौर में नाट्य-प्रस्तुति का स्वरूप प्राय: धार्मिक और आध्यात्मिक था। फिर धीरे-धीरे उसने (सेक्युलर स्वरूप अख्तियार किया। अपने वक्तव्यों में स्वयं हबीब तनवीर ने कई बार नाचा को सेकुलर कलारूप निरूपित किया है।) अब गम्मत लोक-जीवन के परिहासपूर्ण प्रसंगों पर केंद्रित होने लगे। इस दौर में नाचा के कलाकार, जो आमतौर पर मेहनतकश मज़दूर थे, अभिनय करते हुए अपने मालिकों (गौंटिया) पर व्यंग्य भी किया करते थे। दिलचस्प यह है कि मालिक भी इसे अकुण्ठ भाव से स्वीकार करते थे। रात-भर मसखरी करते हुए गौंटिया की हँसी उड़ाने के बाद मज़दूर कलाकार अगले दिन सुबह उसके खेत पर जब मजूरी कमाने के लिए हाज़िर होता था, मालिक सहज भाव से मुस्कुराते हुए पूछ लिया करते-- 'कइसे रे, का गम्मत करेव बे?' (क्यों रे, कैसा गम्मत कर रहे थे?) जवाब में सकुचाते हुए नौकर कह देता-- ' ठट्टा ताय दाऊ। हँसुवाय बार ताय।' (मजाक था दाऊ, हँसाने के लिए।) नौकर-मालिक का सहज सम्बन्ध फिर से क़ायम हो जाता। मगर कलाकार ग़रीब जनता के दिल की बात और उसके भीतर के दर्द को नाचा में खुल कर व्यक्त कर देता था। एक तरफ़ नाचा ग्रामीण समाज में सामुदायिकता और सौहार्द्र की अभिव्यक्ति के मंच के रूप में विकसित हुआ। दूसरी तरफ़ वह शोषण के खिलाफ प्रतिरोध का माध्यम भी बन गया। कलाकार मालगुज़ारों के प्रति अपना आक्रोश नाचा के माध्यम से प्रकट करते थे और मालगुज़ार या गौंटिया उसे मज़ाक समझकर सहज भाव से स्वीकार कर लेते थे। दरअसल नाचा के भीतर प्रतिवादी स्वर अत्यंत मुखर था। उसकी कलात्मकता उसकी प्रतिरोध-वृत्ति में निहित थी।

रवेली-पार्टी की प्रस्तुतियों में नाचा एक सेकुलर विधा के रूप में अधिक परिपक्व और कलात्मकता की दृष्टि से अधिक पुष्ट हुआ। इसमें मंदराजी दाऊ के आत्म-त्याग, समर्पण, सामाजिक सजगता और कला के प्रति अनन्य निष्ठा का बड़ा योगदान है। रवेली नाचा-पार्टी के गठन का दूरगामी

असर हुआ। उसके बाद छत्तीसगढ़ के अलग-अलग इलाक़ों में एक-एक कर नाचा-दलों का गठन होने लगा। पूरे छत्तीसगढ़ अंचल में नाचा-प्रदर्शनों का अभूतपूर्व विस्तार हुआ। ग्रामीण मडई-मेलों में नाचा का प्रदर्शन अनिवार्य हो उठा। बड़ी संख्या में कलाकार आगे आए और नाचा ने एक सांस्कृतिक आंदोलन का रूप ले लिया। इस कला को अद्‌भुत लोकप्रियता प्राप्त हुई। वह रात्रिकालीन मनोरंजन का एक मात्र माध्यम बन गया । दर्शक रात-भर नाचा देखते और आनंदित होते। यह मनोरंजन की नई अवधारणा थी। इसके पहले कमोबेश आधी रात तक गाने-बजाने की परिपाटी के रूप में रात्रिकालीन मनोरंजन प्रचलन में था। मगर रवेली-पार्टी के प्रदर्शनों में नाचा पूरी रात का मनोरंजन था। रात दस बजे कार्यक्रम शुरू होता और सुबह छह बजे तक जारी रहता। हालाँकि मंदराजी के नाचा में केवल मनोरंजन नहीं होता था। उसमें जन-जागरूकता और समाज-शिक्षा पर भी ज़ोर था। दरअसल भारतीय लोकजागरण का एजेंडा-समाज-सुधार और राष्ट्रीय-भावना–नाचा के माध्यम से छत्तीसगढ़ में जन-जन तक प्रसारित हो रहा था।

लोक-मर्मज्ञ कवि जीवन यदु नाचा के इतिहास को आज़ादी की लड़ाई के इतिहास से जोड़ कर देखने का आग्रह करते हैं। वे बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्‌ध की सामाजिक परिस्थितियों, राजनीतिक घटनाक्रम और स्थानीय परिवेश में घटित उथल-पुथल के संदर्भ में मंदराजी दाऊ के रचनात्मक मानस के गठन पर प्रकाश डालते हुए गांधी जी के छत्तीसगढ़-प्रवास और जनमानस पर उनके प्रभाव, पं. सुंदरलाल शर्मा के अछूतोद्‌धार कार्यक्रम, राजनांदगाँव के बंगाल नागपुर कॉटन मिल में 1919 में हुए 35 दिनों के मज़दूर आंदोलन, 1920 के कंडेल नहर सत्याग्रह के रूप में किसान आंदोलन आदि का उल्लेख करते हैं, और बताते हैं कि इन सबका उस दौर के युवा-मानस पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। वे कहते हैं कि इन परिस्थितियों में संगठित नाचा-दल का गठन किया जाना बहुत स्वाभाविक मालूम पड़ता है। मंदराजी के नाचा-प्रदर्शनों में राष्ट्र और समाज की मुक्ति का स्वप्न, देश भक्ति और समाज-सुधार की चेतना, इन्हीं कारणों से प्रकट हो रही थी। मंदराजी अपने गम्मत में आज़ादी का संदेश दिया करते थे। यह अनायास नहीं है कि रवेली नाचा-पार्टी पर अंग्रेज़ी शासन की कुदृष्टि पड़ी और उसके कार्यक्रम को दुर्ग के समीप आमदी गांव में पुलिस ने प्रतिबंधित कर दिया। अन्य स्थानों पर हुई नाचा-प्रस्तुतियों पर भी पुलिस की निगरानी रहती थी।

उन दिनों को याद करते हुए खुमान लाल साव ने लिखा है-- ‘ सन 1942 में स्वतंत्रता आंदोलन की ज्वाला भड़क उठी थी। दाऊजी अपने कार्यक्रम में कुछ राष्ट्रीय गीतों को शामिल कर उनका गायन प्रस्तुत किया करते थे। कुछ कार्यक्रमों को अंग्रेज़ी हुकूमत ने प्रतिबंधित भी कर दिया। उन्हें गाली-गलौज और प्रताड़ना का सामना भी करना पड़ा था। इनकी नाचा पार्टी पर अंग्रेजी शासन के खिलाफ तत्कालीन स्वतंत्रता- सेनानियों के आंदोलन का प्रभाव था। इसलिए कई स्थानों पर इनके नशा के प्रदर्शन पर प्रतिबंध लगा दिया गया। अपना नाचा-प्रदर्शन के समय कलाकार प्रत्यक्ष या परोक्ष

रूप से अंग्रेजी शासन के विरुद्ध कुछ उत्तेजक संवाद बोल दिया करते थे। उस समय गांव में पत्र-पत्रिकाएं, रेडियो आदि प्रचार-प्रसार के साधन नहीं होने के कारण रवेली नाचा-पार्टी को ही तत्कालीन राष्ट्रीय नेता जनसमूह एकत्र करने का अपना माध्यम मानते थे और दाऊजी भी इस प्रकार के कार्यों में रुचि रखते थे।'

छत्तीसगढ़ में स्वाधीनता आंदोलन के संदर्भ में लोक कलाकारों की इस भूमिका को ध्यान में रखा जाना आवश्यक है इससे नाचा की समाजधर्मिता स्वतः प्रमाणित होती है। अनायास नहीं है कि मंदराजी के गम्मतों के कथानक अछूतोद्धार, अस्पृश्यता निवारण, जाति और वर्ण पर आक्षेप, उच्च वर्ग के पाखंड का दृढ़तापूर्वक विरोध, श्रमिक वर्ग की आशा-आकांक्षा, सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन-जैसे विषयों पर एकाग्र थे। उन्होंने जो विषय चुने, वे राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक सुधार से संबंधित हुआ करते थे। अंचल में प्रचलित बाल-विवाह और अनमेल विवाह के विरुद्ध उन्होंने 'बुढ़वा बिहाव' गम्मत में मुखर आवाज़ उठाई। समाज-सुधारक पंडित सुंदरलाल शर्मा द्वारा गाँधी जी के समर्थन से चलाए जा रहे अछूतोद्धार कार्यक्रम से उत्पन्न चेतना का प्रभाव मंदराजी के 'मेहतरिन' या 'पोंगवा पंडित' गम्मत में दिखाई दे रहा था।

इस पृष्ठभूमि में यदि हबीब तनवीर के रंगकर्म पर विचार किया जाए तो यह सहज ही देखा जा सकता है कि उनकी रंगदृष्टि में मौजूद समाज-बोध और यथार्थ-चेतना का नाचा की सामाजिक सजगता और लोकधर्मिता के साथ सहज ही ताालमेल कायम हो गया। हबीब तनवीर के रंगकर्म की सामाजिक चेतना को यदि छत्तीसगढ़ की लोकचेतना का ही सुसंगत तार्किक विकास माना जाए तो यह ग़लत नहीं होगा।

रवेली नाचा पार्टी 'पोंगवा पंडित' को खेलती थी तो दर्शकों का खूब मनोरंजन होता था। वर्ण-व्यवस्था पर कठोर प्रहार के बावजूद इस गम्मत से शांतिभंग की स्थितियाँ कभी नहीं उत्पन्न हुईं। दरअसल छत्तीसगढ़ के लोकजीवन में सौहार्द की एक मजबूत परंपरा विकसित हो चुकी थी जिसके चलते सवर्ण और सामंती शक्तियाँ भी अपने ऊपर किए गए लोक-कलाकारों के प्रतिरोध को स्वाभाविक समझकर अन्यथा नहीं लेती थीं। लेकिन 1990 के दशक में जब हबीब तनवीर ने इसे शहरी रंगमंच पर 'पोंगा पंडित' के रूप में खेला तो प्रतिक्रियावादी-साम्प्रदायिक ताक़तों ने उसका जमकर विरोध किया और उनके मंचों पर तोड़फोड़ की ।

आरम्भिक दौर के नाचा की विषयवस्तु में बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध्द का समूचा सांस्कृतिक परिदृश्य समाहित था। इसलिए अचरज नहीं कि मंदराजी दाऊ के 'ईरानी' नक़ल में हिंदू-मुस्लिम एकता का संदेश था या उनके 'मरारिन नकल' में प्रेम और आत्मीयता का संदेश था। शायद

यही वजह है कि नाचा के कलाकारों द्वारा पारंपरिक रूप से खेले गए कुछ गम्मतों को ज्यों-का-त्यों नागर रंगमंच पर प्रदर्शित करने में हबीब तनवीर को कोई संकोच नहीं हुआ। उन्होंने 'बुढ़वा बिहाव' गम्मत को 'मोर नाँव दमांद, गांव के नाँव ससुरार' नाटक के रूप में खेला जो देश(छत्तीसगढ़) 491001 -विदेश में अत्यंत लोकप्रिय हुआ। '

कहने की आवश्यकता नहीं कि नाचा के इतिहास में मंदराजी की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। सच कहें तो मंदराजी छत्तीसगढ़ी नाचा के पर्याय हैं। .स्वतंत्र भारत के छत्तीसगढ़ी युवा-वर्ग में रवेली नाचा- पार्टी और मंदराजी के प्रति अद्‌भुत दीवानगी थी। भोजपुरी अंचल में बिदेसिया के पुरस्कर्त्ता भिखारी ठाकुर की तरह वे छत्तीसगढ़ी नाचा के उन्नायक शिखर व्यक्तित्व हैं। नाचा को मंदराजी ने न सिर्फ संस्कारित किया बल्कि एक अनुशासित विधा के रूप में उसकी पहचान निर्मित करने और व्यवस्थित लोकनाट्य के रूप में उसे व्यक्तित्व प्रदान करने में भी उनका बड़ा योगदान है।

मंदराजी ने नाचा को आधुनिक और लौकिक तेवर दिया और उसके भीतर अपने समय से टकराने का नया अंदाज़ पैदा किया। एक पारंपरिक कला को उन्होंने सुसंगठित और नए ज़माने के मुताबिक़ नया रूप दिया। हबीब तनवीर ने नागर रंगमंच के अनुरूप उसे समकालीन मुहावरे में ढाल कर छत्तीसगढ़ के गांव-कूचे से निकाला और विश्व-रंगमंच पर प्रतिष्ठित किया। यह कहना मुनासिब होगा कि हबीब तनवीर के लिए नाचा महज़ एक नाट्य-शैली या आधुनिक रंगमंच के एक विशिष्ट मुहावरे की तरह नहीं था, वह उनके रंगमंच में प्राणतत्त्व की तरह समाया हुआ था।

कर्मचारी नगर सोसायटी के पास, ए-63 के पीछे

, *सिकोला भाठा, दुर्ग (छत्तीसगढ़) 491001*